अल्बुकार्कि – न्यू मैक्सिको
सितम्बर ०६, १९९६

सन्देश संख्या १४

'मन' से उत्पन्न गतानुगतिक चार प्रकार की धार्मिकता तथा 'निर्मन' के धर्म के तीन आयाम

क्रियायोग का गन्तव्य मन के विलय से आविर्भूत गहन धार्मिकता है अर्थात् ''निर्मन'' या नूतन मन के धर्म का आलिंगन है जिसमें मन की समस्त ऋणात्मक प्रवृत्तियों का भी ऋणीकरण हो जाता है। परन्तु लय योग की इस गहन धार्मिकता यानी सत्–चित्–आनन्द (जो कि प्रथम क्रिया–पत्र में नीचे लय योग वाणी के रूप में संक्षेप में उल्लिखित है) पर ध्यान देने के पूर्व यह शायद लाभदायक होगा कि हम मन से उत्पन्न गतानुगतिक चार प्रकार की धार्मिकता को समझ लें क्योंकि हम जहाँ पर हैं वहीं से यात्रा प्रारम्भ करना उचित होगा।

प्रथम अज्ञान की उपज है

अहंकार अपने अज्ञान को स्वीकार नहीं करता है। इसलिए यह दृढ़तापूर्वक दावा करता है कि वह जो कुछ जानता है, वही अन्तिम एवं श्रेष्ठतम है। यही धर्म के नाम पर धर्मोन्माद, रूढ़िवाद और समस्त रक्तपात को जन्म देता है। शायद किसी और नाम की अपेक्षा धर्म के नाम पर अधिक रक्त बहाया जा चुका है। यह ''धर्म'' कहता है कि युद्ध भी धार्मिक हो सकता है – धर्मयुद्ध, क्रूसेड, जिहाद इत्यादि। यदि युद्ध पवित्र है तो अपवित्र क्या है? मन की इस विकृत धार्मिकता ने मनुष्य को जीवन ध्वंस करने के लिये उकसाया है और इस प्रकार उसकी समग्रता के विरूद्ध ले जाकर उसकी सत्यनिष्ठा का संहार किया है। चित्तवृत्ति की ये विश्वास पद्धतियाँ मानवता को धोखा देने तथा मनुष्य को शाश्वत दुःखी बनाये रखने की व्यूहरचनायें मात्र हैं।

द्वितीय भय की उपज है

सभी प्रकार के भय और अपराध बोध कल्पनाओं, कथाओं तथा अनुमानों के माध्यम से प्रवर्तित होते हैं। यहाँ मनुष्य मानों केवल दण्ड भोगने तथा पश्चात्ताप करने के लिए ही जन्म लिया है। नरक की अवधारणा भय का अन्तिम स्वरूप है।

तृतीय लोभ की उपज है

सभी प्रकार की उद्भट कल्पना, अपेक्षा, आशा, महत्वाकांक्षा, लालसा और लोभ मन विरचित इस धार्मिकता को प्रोत्साहित करने के लिये ही उत्पन्न किया जाता है जिससे कि मनुष्य सदैव उत्तेजना एवं गड़बड़ी में ड्गँसा रहे। स्वर्ग की अवधारणा चरम लोभ है।

चतुर्थ धर्मशास्त्रों की उपज है

समस्त धारणायें, विरूद्ध धारणायें, सामंजस्य, सभी प्रकार के विवाद एवं विरोध, समस्त आग्रह एवं निषेध, सभी पवित्र अवधारणायें एवं बड़ी–बड़ी बातें व मुहावरे, मन की सभी प्रकार की उपज तथा पूर्व धारणायें कुछ भी नहीं बल्कि सूअर की लीद जैसी हैं।

चित्तवृत्ति से उत्पन्न धर्म के उपर्युक्त चारों प्रकारों में कोई सत्य निहित नहीं है।

अब हम ''निर्मन'' के धर्म को इसके तीन आयामों में समझने का प्रयास करें। यह धार्मिकता तीन अंगभूत अवयवों के साथ केवल एक ही है। यह गहन धार्मिकता धर्म के नाम पर घनीभूत समस्त आवेगों एवं भावुकताओं को जो कि रूग्ण, कुत्सित एवं दुर्गन्धपूर्ण है, दूर कर देता है। चित्तवृत्ति आपको भ्राचार में लिप्त करता है जबकि ''निर्मनावस्था'' (मनोविकृति नहीं) आपका सही पथ प्रदर्शन करता है। आप मन का दुरूपयोग कर सकते हैं किन्तु ''निर्मनावस्था'' का नहीं। ''निर्मनावस्था'' का यह धर्म आपके मन के पूर्वाग्रहों से मुक्ति का विज्ञान है। इसे किसी पैगम्बर, उद्धारक, पोप, अवतार, परमहंस, महामण्डलेश्वर

इत्यादि की आवश्यकता नहीं है। समझदारी एवं प्रज्ञा की शक्ति ही पर्याप्त है। मन सूचना प्रदान करता है, ''निर्मनावस्था'' रूपान्तरण को प्रोत्साहित
करती है।

''निर्मनावस्था'' की धार्मिकता का प्रथम आयाम

सत्–शुद्ध जीवन–अतिथिभाव। यह है अतिथि के भाव से जीवन–यापन करना। हम सभी अतिथि हैं। कोई भी इस जगत का स्थायी निवासी नहीं है। एक अतिथि बिना आसक्ति के किन्तु पूर्ण सामंजस्यबोध के साथ रहता है। जीवन–प्रवाह के जीवन्त स्वरूप में वह किसी प्रकार की गड़बड़ी उत्पन्न नहीं करता है।

''निर्मनावस्था'' की धार्मिकता का द्वितीय आयाम

चित्–शुद्ध चैतन्य–साक्षीभाव। यह है एक साक्षी की तरह से बिना किसी विकल्प के, चेतना को प्रतियोगी विचारों की रणभूमि में परिवर्तित किये बिना, अस्तित्व में रहना–एक ऐसी जागरूकता जिसमें स्थितप्रज्ञ भाव से कोई समझौता नहीं।

'निर्मनावस्था'' की धार्मिकता का तृतीय आयाम

आनन्द–शुद्ध हर्ष (विलास नहीं) समाप्तिभाव। यहाँ समाप्ति पर जोर दिया गया है न कि विरोधों के संवर्द्धन के जाल में ङ्गँसने पर। अशुभ का कृत्रिम विरोध शुभ को जन्म नहीं देता है। यह तो चित्तवृत्ति की ही धूर्तता पूर्ण चाल है। अच्छाई तभी विकसित होती है जबकि बुराइयाँ पूरी तरह से समाप्त हो जाती हैं। जब स्वार्थपूर्ण लालसाओं एवं कामनाओं के कारण उत्पन्न दुःख का निर्मन–प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अन्त हो जाता है तब मंगलमय हर्ष की स्थिति का उदय होता है।

लययोग की उपर्युक्त मौलिक वाणियों, जो कि प्रथम सोपान की क्रियायोग दीक्षा समारोह में समझायी जाती हैं, पर ध्यान करें। इस प्रकार सर्वोच्च गृहस्थयोगी के सीधे एवं निष्कपट सन्देश को समझने का प्रयास करें तथा आध्यात्मिक मण्डी के निरर्थक वाग्जाल में भ्रमित न हों जो कि लाहिड़ी महाशय के कथन के रूप में बेचे जा रहे हैं। लाहिड़ी महाशय इस धरती पर आपको दुर्बल एवं गतिहीन सांत्वनाओं में प्रसन्न रखने के लिये नहीं बल्कि मन–निर्मित कारागार को ध्वंस करने के लिये अवतीर्ण हुए थे। क्रियायोग को समझें और इसका अभ्यास करें तभी आप उसे निश्चित रूप से प्राप्त कर सकते हैं जिसे कि लाओत्जु और लाहिड़ी महाशय ने लय (निर्मनावस्था) में प्राप्त किया था।